Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 7, Print Issue 1&2 - 2022, Pg. No. 5-7
Peer Reviewed Journal

Research Article

मौर्य और शुंग काल के दौरान विदेशी आदान–प्रदान के प्रकाश में भारतीय कला और संस्कृति

Rameshwar Pandey

Assistant Professor, Department of Ancient History, National PG College Barhalganj, Gorakhpur, Uttar Pradesh, India.
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202203

I N F O

E-mail Id:
rameshwarnpg@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/0009-0001-2969-6174

Date of Submission: 2022-04-10
Date of Acceptance: 2022-05-15

सारांश

इस शोध पत्र में लेखक ने मौर्य और शुंग काल के दौरान विदेशी आदान–प्रदान के संदर्भ में भारतीय कला और संस्कृति पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त किए हैं। लेखक इन युगों के दौरान हुए कलात्मक और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे विदेशी संपर्कों ने भारतीय कला रूपों और सामाजिक मानदंडों को प्रभावित और समृद्ध किया। भारत और विदेशी भूमि के बीच अंतर–सांस्कृतिक संबंधों की विस्तृत जांच के माध्यम से, लेखक प्राचीन भारत की कलात्मक अभिव्यक्तियों और सांस्कृतिक लोकाचार पर इन आदान–प्रदानों के परिवर्तनकारी प्रभाव को रेखांकित करता है। इस शोध पत्र में लेखक विस्तार से समझाते हैं कि विदेशी सम्प्रदायों और भारतीय संस्कृति के बीच कैसे सम्बन्ध बने और यह किस प्रकार सांस्कृतिक विनिमय का एक महत्वपूर्ण पहलू है।चर्चा को मौर्य और शुंग राजवंशों के ऐतिहासिक ढांचे के भीतर रखकर, लेखक की खोज विविध सांस्कृतिक विरासतों के अंतर्संबंध और भारतीय कला और सभ्यता पर उनके स्थायी प्रभावों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

मुख्य बिंदुः शुंग, काल, मौर्य, काल, राजवंश, कौटिल्य, अर्थशास्त्र, मानसेहरा कम्बोज, शिलालेख।

भारतीय कला के इतिहास में मौर्यकाल एक नये युग के रूप में सम्मुख आता है। मौर्ययुगीन कला के विकास का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि भारतवर्ष में पहली बार एक व्यापक पैमाने पर प्रस्तर स्तम्भों की स्थापना की गयी। उन स्तम्भों के शीर्ष भाग पर विविध प्रकार की मूर्तियाँ स्थापित की गयी, जो मौर्यकालीन की अमूल्य निधि है। व्यापक पैमाने पर कला में पाषाण प्रयोग और उसमें नक्कासी की अद्भुत तकनीक तथा शिल्प पर ओपदार पालिस का प्रयोग आदि इस युग की कला की कुछ अपनी विशिष्टतायें है, जिसके कारण अधिकांश विचारकों ने विदेशी आदान–प्रदान के प्रकाश में इस कला पर ईरानी अथवा यूनानी कला परम्परा का प्रभाव स्वीकार किया है।

मौर्य कला विदेशी आदान–प्रदान के प्रकाश में किस सीमा तक ईरानी, युनानी और भारतीय है, इस पर सांस्कृतिक समन्वय, पूर्व प्रचलित शिल्प कला–परम्परा, शिल्प समानता आदि सभी पक्षों पर एक साथ ही विचार किया जाना चाहिये। साहित्यिक एवं पुराता. त्विक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि ईरान और उत्तर–पश्चिम भारत सांस्कृतिक रूप से बहुत निकट थे, जिसके फलस्वरूप उनमें कई प्रकार की समानतायें होना अनिवार्य था। उदाहरणार्थ ईरान में अपराधियों को सिर मुड़ाने की सजा दी जाती थी।[1] इसी प्रकार के दण्ड का उल्लेख कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किया है।[2] सम्राट डेरियस और अशोक के उत्कीर्ण लेखों की शैली में समानता दृष्टिगत होती है। डेरियस के लेख की आरम्भिक पंक्ति– "राजा डेरियस का कहना इस प्रकार है कि....." ।[3] अशोक के अभिलेख के इस वाक्य–"देवताओं के प्रिय राजा प्रियदसि का कहना है कि....." ।[4] लेखों में काफी समानता है। भाषा की दृष्टि से भी भारत के पश्चि. चमोत्तर भाग में रहने वाले लोगों और एकेमेनिड ईरान के लोगों में निकट का सम्बन्ध था। मानसेहरा और शाहबाजगढ़ी अभिलेखों में खरोष्ठी का प्रयोग किया जाना ईरान के धनिष्ठ सम्बन्ध का सूचक है। इसी शाहबाजगढ़ी अभिलेख में पाँच पड़ोसी यूनानी राजाओं के नाम हैं– अंतियोक (एण्टियोकस थियोस), तुरमय (मिश्र का यूनानी राजा द्वितीय तालेमी फिलाडेल्फस), अंतिकिनी (मेसोडोनिया नरेश

Copyright (c) 2022: Author(s). Published by Advanced Research Publications

एण्टिगोनस गोनेटस), मक (उत्तरी अफ्रीका का सीरीन राज्य का स्वामी मगस), अलिक सुन्दर (अलेक्जेन्डर एपिरस का राजा) तथा यवन एवं कम्बोजों द्वारा धर्मानुशस्ति (उसके द्वारा प्रतिपादित धर्म के उपदेशों) का पालन किया जाता है।[5] जो मौर्यकाल में विदेशी सांस्कृतिक आदन प्रदान को दर्शाता है। इसी प्रकार शार–ए–कुना (कान्धार) लघु शिलालेख तथा तक्षशिला अभिलेख में एरेमाइक भाषा का प्रयोग यवन एवं कम्बोज प्रजाजनों के लिये थे जो भारत के वैदेशिक सम्बन्ध को दर्शाता है।[6]

मौर्यकाल पर विदेशी आदान–प्रदान को स्वीकार करने वाले इतिहासकारों का अभिमत है कि सम्राट अशोक ने ईरानी कला–परम्परा के आधार पर धर्मानुशासन के लिये स्तम्भों और चट्टानों पर लेख उत्कीर्ण कराये तथा यूनानी कला परम्परा के आधार पर स्तम्भ–शीर्षों पर मूर्तियों का निर्माण कराया। सारनाथ सिंह शीर्ष स्तम्भ पर सह–पृष्ठ–युक्त चार सिंहों का निर्माण बैक्ट्रिया के यूनानी कलाकारों द्वारा किया गया था।[7]

स्पूनर महोदय ने भी मौर्य राजप्रासादों, अशोक स्तम्भों की निर्माण शैली और उस पर प्रयुक्त ओपदार पालिश पर ईरानी प्रभाव को स्वीकारते हुये यह स्पष्ट किया है कि अशोक के अभिलेख सम्राट डेरियस के अभिलेखों की शैली की नकल पर लिखवाये गये हैं।[8] स्मिथ महोदय ने मौर्यकाल में एक विस्तृत पैमाने पर शिल्प में पाषाण का प्रयोग किये जाने का कारण विदेशी परम्परा का अनुकरण बतलाया है। उन्होंने सुझाव दिया है कि सारनाथ का सिंह–शीर्ष विदेशी कलाकारों की कृति हो सकती है क्योंकि एक शताब्दी बाद जब वैसी मूर्ति साँची के दक्षिणी तोरण पर निर्मित की गयी तो वह प्रयास असफल सिद्ध हुआ।[9] साथ ही उन्होंने अशोक स्तम्भों के शीर्ष फलक पर उत्कीर्ण पशु मुर्तियों की निर्माण शैली पर विदेशी प्रभाव की व्याख्या की है।[10] बेन्जामिन रोलैंड ने भी यह विचार व्यक्त किया है कि मौर्यकाल के अधिकाधिक पक्षों पर विदेशी कला परम्परा का प्रभाव है।[11] भगवतशरण उपाध्याय के अभिमत में ईरानी मिस्त्री संस्कृति का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर है, लेखन कला पर है किन्तु इससे भी अधिक महत्व का ईरानी प्रभाव भारतीय मूर्तिकला पर पड़ा है।[12] हवीलर महोदय ने यह सुझाव दिया है कि स्तम्भों के निर्माण के लिये मौर्य राज्य द्वारा नियुक्त कलाकार बेरोजगार ईरानी शिल्पकार थे, जो भारत में बस गये थे।[13]

निहार रंजन राय के विचार में इस बात में किंचित संदेह नहीं है कि निर्माण की प्रेरणा विदेश से प्राप्त हुई है। शिल्प में अचानक पाषाण का प्रयोग, विविध अलंकरणों तथा विशाल कृतियों का निर्माण, आदिम शिल्पाकृति का सजीव परिष्कृत अंकन और उसका तीव्र विकास तथा इस समस्त अभिप्रायों का आदिम से शाही हो जाना यह स्पष्ट करता है कि शिल्प–निर्माण की प्रेरणा बाहर से ली गयी थी।[14] किन्तु राय महोदय का कहना है कि पशु मूर्तियों की कला में ईरानी लक्षणों का प्रभाव स्पष्ट नहीं होता है। उन्होंने यूनानी और भारतीय मूर्तियों की रचना–विधा सौन्दर्यांकन की तुलनात्मक विवेचना कर अधिकाधिक रूपों में सामंजस्य निरुपित करते हुये यह विचार व्यक्त किया है कि मौर्ययुगीन मूर्तियों पर यूनानी शिल्प परम्परा की छाप है।

सिकन्दर के अभियान के बाद पश्चिमोत्तर भारत में यूनानी बस्तियों भी कायम हुई. जिनकी स्थापना या तो यूनानी पलायित सैनिकों द्वारा या स्वेच्छा से रहने वाले लोगों द्वारा हुयी होगी। वास्तव में भारत का यूनानियों से सम्पर्क कोई नवीन बात नहीं थी। सिकन्दर के पूर्व सिन्धु पर तथा अफगानिस्तान के क्षेत्र यूनानी बस्तियों के प्रमाण मिलते हैं। जेरेक्सीज के द्वारा भी वल्ख और समरकन्द के मध्य एक बस्ती बसाये जाने का उल्लेख मिलता है, जिसे ब्राचिण्डे कहा गया है, उसे अपने आक्रमण के समय सिकन्दर ने समाप्त कर दिया था।[15] भारतीय राजदरबार में आने वाले मेगास्थनीज, डेमाकस और डियोनिसियस आदि दूत यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि यूनान और भारत का सम्बन्ध अति प्रगाढ़ था। गंधार में बौद्ध धर्म का प्रवेश अशोक के समय से ही हो गया था। उसके बाद विदेशी शासकों ने बौद्ध धर्म को अपनाकर उसके प्रसार और विकास में योगदान दिया। द्वितीय शती ई० पूर्व में अनेक यवन शासकों ने इस प्रदेश पर राज्य किया। यवनों की बौद्ध धर्म में रुचि अशोक के समय से ही सुविदित है। मिनेण्डर के समय तक बौद्ध धर्म गन्धार में अपनी जड़े जमा चुका था। अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त योन शब्द यूनानी बस्तियों अथवा यूनानी राज्य की तरफ संकेत करता प्रतीत होता है। अतः इस बात को स्वीकार करने में कोई पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिये कि अन्य क्षेत्रों की भाँति भारतीय कला के क्षेत्र में भी यूनानी, ईरानी और भारतीय शिल्प गौरव को समन्वित रुप में समेटे हुये है।

विदेशी आदान–प्रदान के फलस्वरुप शुंग काल में भारतीय कला और संस्कृति के विकास का एक महत्वपूर्ण कारण भारत का विदेशों से व्यापार प्रमुख था। इसी कारण इस युग में कृषि तथा अन्य उद्योगों के विकास के साथ–साथ साहित्यिक प्रगति भी हुयी। मध्य एशिया से विदेशी जातियां भारत में आई और उनके साथ उनका कला परम्परा भी आयी. जो भारतीय मूर्ति कला के विकास में सहायक सिद्ध हुयी। स्ट्रैलाकामरिश का कहना है कि ''भारतवर्ष की जो अपनी सांस्कृति धरोहर थी वह समन्वय से अधिक जीवित हुयी और अन्य जातियों के सम्पर्क से उसने अपने को समय–समय पर परिवर्तित किया और शुंग–काल ऐसी विशेषता के लिये अधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि युग में देशी संस्कृति का सम्पर्क विदेशी संस्कृति से हुआ। निहाररंजन राय के अनुसार भरहुत, बोधगया और साँची की कलाओं में पश्चिम एशिया के कुछ रूपों तथा कतिपय कला चेष्टाओं का प्रयोग किया गया है। परन्तु इनकी सुन्दरता को देश की निजी कला–परम्परा के साथ ऐसा मिलाया गया है कि विदेशी रूप लुप्त सा हो गया है। इस दृष्टि से विचार करने पर शुंग–काल की यह प्रमुख विशेषता है कि इसमें अधिकांश जनता के मानस, सांस्कृतिक आदर्श तथा उसकी परम्परा का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। इस बात में यह मौर्ययुग से नितान्त भिन्न है।[16]

शुंगकालीन बेस नगर गरुण स्तम्भ लेख से द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के अन्तिम वर्षों में पश्चिमोत्तर भारत के यवन राज्यों की जानकारी प्राप्त होती है। यवन राजा अंतलिकित (एण्टियाल्किडज) भारतीय शासक भागभद्र से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। काशी. पुत्र भागभद्र के शासनकाल में तक्षशिला के यवन राज अन्तलिकित द्वारा प्रेषित हेलियोदोर नामक राजदूत विदिशा गया। उसने वहाँ

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202203

प्राचीन विष्णु मन्दिर के सामने एक गरुडध्वज स्थापित किया।[17] इसी अभिलेख से राजनीतिक दौत्यकर्म की जानकारी भी प्राप्त होती है। बेसनगर अभिलेख से सिद्ध होता है कि उस समय तक वैष्णव धर्म विदेशी यूनानीयों में भी लोकप्रिय होने लगा था। गरुड़ को हिन्दू पुरा कथाओं में विष्णु का वाहन माना गया है। वैष्णव धर्मावलम्बी राजा ध्वज स्तम्भों पर गरुड़ की प्रतिमा स्थापित कराते थे जिन्हें गरुड़ ध्वज कहा जाता था। इस प्रकार बेसनगर अभिलेख से वैष्णव धर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है। बेसनगर अभिलेख की भाषा पर यूनानी प्रभाव स्पष्टतः दिखायी देता है। उदाहरणार्थ इसमें भागभद्र के लिये "त्रातारस" उपधि स्पष्टतः यूनानी सोटेरास का प्राकृत रुप है।[18]

बलराम की मूर्तियों का निर्माण शुंगकाल में ही आरम्भ हो गया था। मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति में उनके हाथों में हल और मूसल प्रदर्शित किया गया है। उनके सिर के ऊपर सर्प–फण का छत्र है।[19] इसी प्रकार भारतीय प्रदेशों पर शासन करने वाले यूनानी शासकों द्वारा चलायी गयी मुद्राओं पर भी भारतीय देवी–देवताओं का अंकन प्राप्त होता है। यूक्रेटाइडिज की एक ताम्र मुद्रा के पृष्ठ भाग पर कपिशा के नगर देवता का अंकन प्राप्त होता है। जो विदेशी धार्मिक आदान–प्रदान का सबसे बड़ा प्रमाण है। यूनानी शासकों द्वारा भारत पर शासन करने के उपरान्त उनके द्वारा चलायी गयी मुद्रायें का भारती मुद्राओं के निर्माण पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारत की प्राचीनतम ज्ञात मुद्रायें ''आहत मुदायें'' है, जिन पर न तो लेख है और न ही उन पर मानव आकृतियों का अंकन है। आहत मुद्राओं के तत्काल बाद ही हिन्द–यवन मुद्राओं का काल आता है। इसके बाद के भारतीय राजवंशों ने जो मुद्रायें प्रवर्तित कीं, उन पर हिन्द–यवन मुद्राओं का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। यह सुविदित तथ्य है कि हिन्द–यवन मुद्राओं के प्रेरणा से ही भारत में लेखयुक्त मुद्राओं के प्रचलन की परम्परा विकसित हुयी। इसी प्रकार हिन्द–यवन शासकों ने द्विभाषी मुद्राओं का प्रचलन कराया। इन द्विभाषी मुद्राओं के पुरोभाग पर युनानी एवं रोमन लिपि में तथा पृष्ठभाग पर प्राकृत भाषा एवं खरोष्ठी लिपि या ब्राह्मी लिपि में लेख अंकित हैं। जो भाषाई रूप में विदेशी आदान–प्रदान का सशक्त उदाहरण है।

इस प्रकार मौर्य और शुंगकाल के दौरान विदेशी आदान–प्रदान के फलस्वरुप मौर्यकालीन स्तम्भ शिल्प अभिप्राय, संरचना और शैली की दृष्टि से अपने में ईरान, यूनानी और भारतीय शिल्प–गौरव को समन्वित रुप में समेटे हुये हैं। मौर्य और शुंगकाल की सामाजिक, धार्मिक स्थिति तथा भाषा के माध्यम से भारत विदेशी संस्कृतियों के सन्निकट आने से अनेक क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित किया तथा समाज के विकास के मार्ग प्रशस्त हुये।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र में लेखक ने मौर्य और शुंग काल के दौरान विदेशी आदान–प्रदान के प्रकाश में भारतीय कला और संस्कृति विषय पर विस्तार से सफलतापूर्वक अपना मत रखा है। विस्तृत विश्लेषण इस बात पर प्रकाश डालता है कि अन्य देशों के साथ वस्तुओं और विचारों के आदान–प्रदान ने भारतीय कलात्मक अभिव्यक्तियों और सांस्कृतिक प्रथाओं के विकास को कैसे प्रभावित किया। इन ऐतिहासिक युगों के दौरान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की बारीकियों की जांच करके, लेखक विभिन्न सभ्यताओं के अंतर्संबंधों और प्राचीन भारत के कलात्मक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर ऐसे संबंधों के प्रभाव के बारे में सफलता पूर्वक बहुमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। उस समय की कलाकृतियों, व्यापार मार्गों और ऐतिहासिक संदर्भों की गहन खोज के माध्यम से, यह शोध पत्र मौर्य और शुंग राजवंशों के दौरान भारत की कलात्मक और सांस्कृतिक पहचान को आकार देने में विदेशी व्यापार द्वारा निभाई गई भूमिका की व्यापक समझ हमे प्रदान करता है। ऐतिहासिक अभिलेखों और पुरातात्विक खोजों के सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से, लेखक ने एक ज्वलंत तस्वीर पेश की है कि कैसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने उस समय की कलात्मक प्राथमिकताओं, तकनीकों और प्रतिमा विज्ञान को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह शोध पत्र भारतीय कला और संस्कृति पर विदेशी संपर्कों के प्रभाव पर विद्वानों के प्रवचन में एक मूल्यवान योगदान के रूप में कार्य करता है, जो हमे उन प्रभावों का पता लगाने के लिए आमंत्रित करता है जिन्होंने युगों से भारत की कलात्मक विरासत को आकार दिया है।

संदर्भ

1. स्मिथ, वी.ए. अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ०– 137
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र (गणपति शास्त्री सं०) IV 9
3. इण्डियन एन्टीक्वेरी, बम्बई XX पृ० 255
4. गिरीनार इथिग्रफिया इण्डिका II पृ० 450
5. गोयल, श्रीराम प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह (खण्ड 1) पृ० 63–70
6. वही, पृ० 124–125
7. श्रीवास्तवा, डा० व्रजभूषण प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला पृ० 250
8. जर्नल ऑव द रायल एशियाटिक सोसाइटी 1920 पृ०. 63
9. स्मिथ, वी.ए. ए हिस्ट्री ऑव फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन पृ० 16
10. वही, पृ० 19–20
11. रोलैण्ड, बी. द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया, पृ० 43
12. उपाध्याय, मगवत शरण, भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका
13. एशिएंट इण्डिया (द जर्नल ऑफ दि आर्कियोलाजिककल सर्वे ऑफ इण्डिया) IV पृ० 94
14. बैकोफर एल. अर्ली इण्डियन स्कल्पचर, बा० 1 पृ० 6–7
15. नारायण, ए०के०, द इण्डो ग्रीक, पृ० 3
16. राय, एन. आर. एज ऑफ इम्पिरियल यूनिटी अध्याय XX पृ० 510
17. बाजपेयी, के०डी० भारतीय वास्तुकला का इतिहास, पृ० 67
18. गोपाल श्री एम, वही, पृ० 156–161
19. शास्त्री, ए० एम०, नागपुर विश्वविद्यालय जर्नल भाग XVI पृ० 6–7, चित्र–2

ISSN: 2456-0510
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202203